“सारांश या उपसंहार पृ0-577-587”

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अध्ययन सौविध्य की दृष्टि से आठ अध्यायों में विभाजित है। शोध प्रबन्ध के विवेचन एवं प्रस्तुतीकरण के क्रम में–

'प्रथम अध्याय नाटककार का इतिवृत्त–व्यक्तित्व एवं कृतित्व है'। इस अध्याय में नाटककार वाणभट्ट का इतिवृत्त–व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर्यालोचित है। प्रस्तुत अध्यायगत वस्तु विषय के संचयन के लिए अन्तः बाह्य साक्ष्यों का आश्रय ग्रहण किया गया है, और इन साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में नाटककार वाणभट्ट के **इतिवृत्त एवं व्यक्तित्व भाग में**–बाणभट्ट की वंश–परम्परा, बाणभट्ट की निवास भूमि, बाणभट्ट का स्थिति समय,वाणभट्ट का बाल्यकाल,बाणभट्ट का जीवन चरित, बाणभट्ट का दाम्पत्य जीवन,वाणभट्ट के पुत्र एवं पुत्रियां, बाणभट्ट का व्यक्तित्व, बाणभट्ट की आर्थिक स्थिति,बाणभट्ट का धार्मिक विश्वास विवेचित है। **'बाणभट्ट के कृतित्व' भाग में** उनकी कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रदान करने के क्रम में सर्वप्रथम तत्कृत हर्ष चरित का उच्छ्वास क्रम से प्रथम उच्छ्वास से अष्टम उच्छ्वास तक की कथा वस्तु को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। इसी क्रम में (2)कादम्बरी का कथामुख से उत्तरार्ध तक की कथा को सारांशतः प्रस्तुत किया गया है। अनन्तर उनकी अन्य कृतियों (3) मुकुट ताडितक,4–चण्डी शतक, (5)रत्नावली, (6) पद्य कादम्बरी का भी संक्षिप्त परिचय प्रदान किया गया है।

द्वितीय अध्याय 'भारतीय नाट्यकला का अनुशीलन' है। इस अध्ययाय में भारतीय नाट्य सिद्धान्त के उन विविध आयामों एवं तत्वो को विवेचित किया गया है। जिन्हें आधार रूप में ग्रहण कर उनके परिप्रेक्ष्य में नाटककार वाणभट्ट के'पार्वती परिणयम्' नामक प्रस्तुत नाटक के नाटकीय तत्वों को आगे के अध्यायों में विवेचित एवं समीक्षित करने का यथा सम्भव प्रयास किया गया है। नाट्यकला के अन्तर्गत उन समस्त नाटकीय तत्वों का समावेश होता है। जिनकी उपस्थिति में किसी नाटककार की नाट्यकृति दशरूपकों के मध्य अपना विशिष्ट स्थान एवं महत्व स्थापित करके एक श्रेष्ठ नाटक की श्रेणी में परिगणित होती है। इन तत्वों में प्रधान रूप से वस्तु ,नेता, रस, इन तीन तत्वों को भारतीय आचार्यों ने साग्रह स्वीकार किया है। अतः द्वितीय अध्याय में भारतीय नाट्यकला के इन अनिवार्य आधारभूत तत्वों के स्वरूप का विश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

अतः इस अध्यायगत विवेचन क्रम में नाट्योद्गम विषयक परम्परागत भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए नाट्यशास्त्र भाव प्रकाशन आदि ग्रन्थों में प्रतिपादित नाट्योद्गम विषयक विचारों के अतिरिक्त आधुनिक मत–मतान्तरों का भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस क्रम में नाटयोत्पत्ति के प्रति वेद–धर्म और देवताओं के योगदान का निदर्शन डॉ0 हर्टले, डॉ0वान् श्रेडर, प्रोफेसर विण्डिश ,ओल्डेन वर्ग, और पिशेल प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों के मतों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। इसी क्रम में भारतीय आचार–व्यवहार की प्रवृत्ति, निवृत्ति के निदर्शक वेदों तथा तद्विहित वैदिक कर्मकाण्डों में नाट्य के स्रोतों के विवेचन एवं समीक्षण के साथ–साथ नाट्योगम के वेद भिन्न विचारों का उपस्थापन एवं समीक्षण प्रस्तुत किया गया है। नाट्योद्गम में भारतीय धर्म–सम्प्रदाय तथा लोक चेतना के योगदान के विवेचन क्रम में शैव एवं वैष्णव सम्प्रदायों के योग दान का प्रतिपादन करते हुए भगवान् विष्णु के अवतारों का भारतीय नाट्योदभव के प्रति योगदान तथा बौद्ध और जैन सम्प्रदायों का नाट्य प्रेक्षण विषयक विधि निषेध के विवेचन के साथ वीर काव्यों रामायण महाभारतादि का भारतीय नाट्योद्गम के प्रति योगदान विषयक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अनन्तर भारतीय नाट्योद्गम विषयक अन्य वादों को प्रस्तुत करते हुए डॉ0 पिशेल का पुत्तलिका नृत्यवाद, भारत में पुत्तलिका नृत्य की परम्परा, सूत्रधार शब्द का परम्परागत अर्थ विकास, प्रो0ल्यूडर्स का छायावाद, डॉ0 रिजवे का प्रेतात्मवाद आदि नाट्योत्पत्ति विषयक वादों का विवेचन प्रस्तुत करके भारतीय नाट्योत्पत्ति विषयक विवेचन का निष्कर्ष प्रस्तुत करके भारतीय नाट्योत्पत्ति का काल निर्णय तथा नाट्य की दृश्यात्मकता, प्रदर्शन सापेक्षता, सर्वजन ग्राह्यता, सहज साधारणीकरणीकरणात्मता, रसास्वाद की पूर्णता, तथा समाज के प्रति नाट्य के उत्तरदायित्व आदि विषयों को विवेचित किया गया है। इसी क्रम में नाट्य की रङ्गमञ्चीयता तथा उसके स्वरूप विधायक तत्वों का विवेचन प्रस्तुत करते हुए, (1)जनान्तिक(2)अपवारितक आदि नाट्येतिवृत्त के भेदों का स्वरूप विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अन्त में भारतीय नाटकों के उपजीव्यों का निदर्शन तथा पौर्वात्य एवं पाश्चात्य नाट्यशैली का साम्य–वैषम्यनिदर्शन प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय वस्तु संविधान है। प्रस्तुत अध्याय में वस्तु के सामान्य अर्थ को प्रतिपादित करते हुए नाट्य में कथावस्तु के महत्व तथा उसके साथ भाव के अन्तःसामञ्जस्य को प्रतिपादित किया गया है। इस क्रम में भारतीय नाटकों की कथावस्तु का माङ्गलिक स्वरूप, संस्कृत नाटकों की मूल प्रकृति, कथावस्तु का दृश्य–सूच्य मूलक विवेचन, नाट्य में अवस्थादि पञ्चकत्रय के विनियोग का उद्देश्य और महत्व, सन्धि–सृष्टि विषयक विभिन्न आचार्यों की विचार दृष्टि, भरत तथा परवर्ती आचार्यो के विचारों की समीक्षा, पञ्चकत्रय के विनियोग के प्रति समालोचकों के विचारों की समीक्षा आदि विषयों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। पूर्व विवेचित तत्वों के परिप्रेक्ष्य में ही पार्वती परिणयम् का वस्तु संविधान विवेचित है। नाटकीयेतिवृत्त के विवेचन के क्रम में सर्वप्रथम पार्वती परिणयम का अङ्कानुक्रम से सार संक्षेप प्रस्तुत करते हुए अङ्कगत कथावस्तु का मूल्याङ्कन प्रस्तुत करके नाटकीय कथावस्तु के मूल स्रोतों तथा अवान्तर स्रोतों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। नाटकीयेति वृत्त के मूल स्रोत के विवेचन के प्रसङ्ग में शिव पुराण रुद्र संहिता पार्वती खण्ड के अष्टम अध्याय से पञ्चपञ्चाशत अध्याय तक की कथा के परिप्रेक्ष्य में पार्वती परिणयम् की इतिवृत्त का परिवर्तन, परिवर्धन–संक्षेपण और निरसन प्रस्तुत किया गया है।

अनन्तर पार्वती परिणयम् में वस्तु तथा भाव तत्व के अद्भुत समाञ्जस्य को विवेचित किया गया है। अनन्तर पार्वती परिणयम् के वस्तु संविधान के नाटकीय वैशिष्ट्य के दिग्दर्शन हेतु पार्वती परिणयम् में पञ्चसन्धियों तथा सन्ध्यङ्गों का निदर्शन प्रस्तुत किया गया है, और अन्त में पार्वती परिणयम् में अन्वितित्रय को दिग्दर्शित किया गया है।

जहॉ तक नाटककार वाणभट्ट द्वारा प्रस्तुत नाटक में वस्तु–संविधान के विनियोग का प्रश्न है तो, प्रस्तुत नाटक पार्वती परिणयम् के उपर्युक्त विवेचन से उपलब्ध तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में हम स्पष्ट रूपेण यह कह सकते हैं कि–नाटककार ने अपने प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु भारतीय आदर्श संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले आर्ष ग्रन्थों अष्टादश पुराणों में परिगणित शिव पुराण के पार्वती खण्ड से ग्रहण किया है। अतः प्रस्तुत नाटक का प्रधान इतिवृत्त प्रख्यात् श्रेणी का वस्तु है। जिसे नाटककार ने अपनी प्रतिभापूत कल्पना के स्पर्श

से नाटकीय एवं रङ्गमञ्चीय स्वरूप प्रदान किया है। प्रस्तुत वस्तु के पौराणिक एवं प्रख्यात होने से उससे समस्त भारतीय सहृदय लोक सर्वथा सुपरिचित है। अतः उसकी सम्प्रेषणीयता के लिए पृथक प्रयत्न से अवकाश प्राप्त कर नाटककार ने अपना समस्त ध्यान एवं नाट्यकौशल उसकी नाटकीयता एवं रङ्गमञ्चीयता के विधान में विनियुक्त किया है। परिणामतया प्रस्तुत नाटक के वस्तु संविधान में नाटकीय वस्तु संविधान के संगठनात्मक स्वरूप के आदर्श भूत पञ्चकत्रयों तथा अन्वितित्रयों का अङ्गों एवं उपाङ्गों के साथ अपृथग्यत्न निर्वत्य विनियोग उपलब्ध होता है। किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि प्रस्तुत नाटक के नाटकीयेतिवृत्त में अनावश्यक होने पर भी शास्त्रीय नियमों एवं निर्देशों के अनुपालन में सन्ध्यङ्गों का विनियोग किया गया है। प्रत्युत् यह कहा जा सकता है कि पार्वती परिणयम् के वस्तु संविधान में किसी भी ऐसे सन्ध्यङ्ग का विनियोग प्रयत्न पूर्वक नहीं किया गया है, जो मात्र शास्त्रानुपालन के लिए किया गया हो और जिससे नाटकीयेतिवृत्त की गतिशीलता में अवरोध उत्पन्न होता हो। संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि नाटककार बाणभट्ट के नाटकीय वस्तु संविधान में उनकी प्रतिभा का स्पर्श प्राप्त करने के लिए सभी आवश्य तत्व सन्धि–सन्ध्यङ्ग, तथा अन्विति त्रय अहमहमिकया उनके वस्तु संविधान में स्वयं उपस्थित हुए परिलक्षित होते हैं। परिणामतया पार्वती परिणयम् का नाटकीय वस्तु संविधान अत्यन्त सुसंगठित, प्रभावोत्पादक, सहृदयहृदयानुरञ्जनक्षम रूप में दृष्टिगोचर होता है।

प्रस्तुत नाटक का चतुर्थ अध्याय पात्र–पर्यालोचन या चरित्र विधान है। अतः इस अध्याय में सर्वप्रथम चरित्र विधान के आधारभूत तत्वों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। जिनके तत्वावधान में पार्वती परिणयम् के मुख्यामुख्य पात्रों का चरित्राङ्कन प्रस्तुत किया गया है। अत एव पात्र विधान का आधार, पात्र जीवन के शाश्वत् धारा के प्रतीक, दशरूपकों के भेदक वस्तु–नेतृ तत्वों का पारस्परिक सम्बन्ध, नाटक में अप्रधान पात्रों के विनियोग का उद्देश्य, पात्र–विधान में औचित्य एवं औदात्य का वैशिष्ट्य, नेतृतत्व का अर्थ विस्तार तथा नेतृतत्व में अपेक्षित सामान्य शील–गुण का स्वारस्य, भारतीय नाटकों की आदर्श पद्धति का

व्यावहारिक मूल्याङ्कन विवेचित करके पार्वती परिणयम् के पात्रों को प्रधान–गौण दो वर्गो में वर्गीकृत करके सर्वप्रथम प्रधान पुरुष पात्रों का अनन्तर प्रधान नारी पात्रों का चरित्राङ्कन प्रस्तुत करने के क्रम में सर्वप्रथम प्रस्तुत नाटक के नायक भगवान् शङ्कर,अनन्तर देवर्षि नारद, हिमवान्, महेन्द्र,वृहस्पति, कामदेव प्रभृति पुरुष पात्रों का चरित्राङ्कन प्रस्तुत किया गया है। पश्चात्,पार्वती परिणयम् के प्रधान स्त्री पात्रों के चरित्राङ्कन के क्रम में प्रस्तुत नाटक की नायिका देवी पार्वती का चरित्राङ्ककन प्रस्तुत किया गया है। अनन्तर पार्वती परिणयम् के अन्य गौण पुरुष–स्त्री पात्रों का चरित्राङ्ककन प्रस्तुत करते हुए प्रस्तुत नाटकीयेतिवृत्त को फलागम तक ले जाने में उनकी भूमिका का निदर्शन प्रस्तुत किया गया है।

नाटककार बाणभट्ट कृत 'पार्वती परिणयम् नामक 'प्रस्तुत नाटक के पात्र विधान या चरित्र विधान नामक प्रस्तुत अध्यायगत उपलब्ध तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि नाटककार वाणभट्ट के प्रस्तुत नाटक का नेतृविधान आदर्श एवं हृदयग्राही हैं। पार्वती परिणयम् के प्रत्येक चरित्र लोक के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करते हुए प्रतीत होते हैं। उनके चरित्र नायक तथा नायिका सर्व जन–अभीष्ट अधिष्ठातृ देवरूप में प्रतिष्ठित योगीश्वर भगवान् शङ्कर तथा जगज्जननी भगवती पार्वती हैं। नाटककार बाणभट्ट की प्रस्तुत नाट्यकृति के नायक भगवान् शङ्कर जहॉ अपने आत्मलीन, अव्याहत ब्रह्मचर्य परिनिष्ठित चरित्र के माध्यम से समस्त पुरुष–समाज के समक्ष योग का आश्रय ग्रहण करके एक आदर्श समाज का निर्माण करने का आदर्श प्रस्तुत करते हैं, वहीं नारद परहित के लिए तत्पर एक आदर्श ऋषि का तो हिमवान् एक आदर्श सद्गृहस्थ का, और नन्दी एक आदर्श स्वामिभक्त सेवक का,आदर्श प्रस्तुत करते हुए परिलक्षित होते हैं। कामदेव तो 'परोपकाराय सतां विभूतयः' इस सूक्ति को चरित्रार्थ करता हुआ लोक कल्याण के लिए अपने प्राण तक को भी प्रदान कर देने का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। वहीं स्त्री पात्रों में भगवती पार्वती अपनी चरित्रगत विशेषताओं के माध्यम से नारी उन्नति, तथा नारी विकास के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण करती हुई, तथा स्वयं का ही चीरहरण करती हुई भारतीय ललनाओं को जीवन मे त्याग और तपस्या को ग्रहण कर स्वयं को आदर्श भारतीय ललना के रूप में प्रस्तुत करने

का आदर्श प्रस्तुत करती हैं, और मेना आदर्श पत्नी तथा माता का तथा जया–विजया आदर्श सखी की, एवं रम्भा आदर्श प्रेमिका का आदर्श प्रस्तुत करती हैं। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि पार्वती परिणयम् के चरित्र–विधान में लोभ एवं स्वार्थपरता का सर्वथा अभाव है। महेन्द्र का चरित्र जहॉ लोभ और स्वार्थपरता की चरम परिणति है, वहीं बृहस्पति का चरित्र उसका परिपोषक है। ए दोनों ही चरित्र अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए प्राण संशय होने पर भी कामदेव को भगवान् शिव को अपने सम्मोहनास्त्र का लक्ष्य बनाने के लिए प्रेषित कर देते हैं। तथापि प्रस्तुत नाटक में त्याग–तपस्या की अपेक्षा स्वार्थपरता के भाव बहुत ही स्वल्प हैं। संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि पार्वती परिणयम् का चरित्रविधान एक आदर्श चरित्र विधान है। जो भारतीय चरित्र विधान का मूल स्वारस्य है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का पञ्चम अध्याय रस–विमर्श है। इस अध्याय में रस सिद्धान्त विषयक भारतीय आचार्यों के विचार–विश्लेषण के प्रसङ्ग मे आचार्य भरत तथा आचार्य आनन्द–

वर्धन प्रभृति भारतीय आचार्यों के विचारों को प्रस्तुत किया गया है। इस क्रम में– रस–सिद्धान्त भारतीय मनीषा की अनुपम उपलब्धि, आचार्य भरत और रस सिद्धान्त,रस सिद्धान्त और आचार्य आनन्दवर्धन, आदि विषयों के प्रस्तुतीकरण के पश्चात् रस स्वरूप, रस की अलौकिकता, रस के मूल उत्स भाव का स्वरूप,रस और भाव का पारस्परिक सम्बन्ध,रस संख्या, श्रृङ्गारादि रसों के निरूपण के प्रसङ्ग में (1)श्रृङ्गार (2)हास्य(3)करुण(4)रौद्र (5)वीर (6)भयानक,(7)वीभत्स (8)अद्भुत, (9)शान्त आदि नौ रसों के स्वरूप विवेचन के पश्चात् पार्वती परिणयम् के अङ्गी तथा अङ्ग रसों के विवेचन के क्रम में पार्वती परिणयम् में विनियोजित (1)हास्य (2)करुण (3)रौद्ररस,(4)वीर (5)भयानक(6)अद्भुत, आदि अङ्ग रसों का पर्यालोचन प्रस्तुत किया गया है।

पार्वती परिणयम् के रस–विमर्शाध्याय से उपलब्ध तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि नाटककार बाणभट्ट की प्रतिभा सामान्य रूप से सभी नौ रसों के समुचित विन्यास एवं निष्पत्ति में पूर्ण रूपेण सक्षम है। परिणामस्वरूप हमें पार्वती परिणयम् में प्रायशः प्रकरणानुकूल रसों की उपलब्धि होती है। प्रस्तुत नाटक में सकल लोकाभिप्रेत श्रृङ्गारस ने जहॉ अङ्गी रस के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की है। वहीं अङ्ग रस के रूप में प्रायशः हास्य,करुण,वीर,रौद्र,भयानक,

अद्भुत रसों का विनियोग उपलब्ध होता है। पार्वती परिणयम् के रस–पर्यालोचन के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि पार्वती परिणयम् में रस और वस्तु का अद्भुत सामञ्जस्य उपलब्ध होता है। न तो रसातिरेक से मुख्य–वस्तु का कहीं विच्छेद अवलोकित होता है, और न तो वस्तु के समुत्कर्ष से रस का तिरोभाव ही परिलक्षित होता है।संक्षेपतः यह कह सकते हैं कि पार्वती परिणयम् का रस–संविधान भारतीय नाट्य साहित्य को प्रदत्त बाणभट्ट जैसे परिणतप्रज्ञ नाटककार की नाट्यप्रतिभा की एक उत्कृष्ट देन है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का षष्ठ अध्याय भाषा–शैली है। इस अध्याय में शैली का सामान्य अर्थ निर्धारण तथा कलाकार के वैयक्तिक व्यक्तित्व के प्रकाशन में शैली की भूमिका तथा शैली विषयक भारतीय आचार्यों की विचार दृष्टि के विवेचन क्रम में आचार्य आनन्दवर्धन, आचार्य दण्डी और कुन्तक तथा भवभूति की शैली विषयक विचार दृष्टि का विवेचन किया गया है। अनन्तर पार्वती परिणयम् की भाषा–शैली के पर्यालोचन के प्रसङ्ग में पार्वती परिणयम् की भाषा–शैली में पाण्डित्य और वैदग्ध्य तथा प्रौढ़ि का पर्यवेक्षण प्रस्तुत करते हुए पार्वती परिणयम् में प्रौढ़ि की व्यास तथा समास शैली का निदर्शन प्रस्तुत है। अनन्तर पार्वती परिणयम् में त्रिविधशैली विनियोग के दिग्दर्शन के क्रम में–(1)प्रस्तुत विषय का यथार्थ चित्रण। (2)प्रस्तुत विषय का अप्रस्तुत उपमानों के माध्यम से वर्णन, (3)विषय वस्तु के रूप गुण से प्रभावित वातावरण के वर्णन के माध्यम से वर्ण्य विषय वस्तु का चित्रण, दिग्दर्शित किया गया है। पश्चात् नाटककार बाणभट्ट की नाटकीय भाषाशैली में उदारता,अर्थगौरव, औचित्य, का पर्यालोचन प्रस्तुत करने के पश्चात् पार्वती परिणयम् की भाषा शैली के अनौचित्यपूर्ण स्थलों को भी संकेतित किया गया है। पश्चात् पार्वती परिणयम् की भाषा शैली में शारीरिक सौन्दर्य चित्रण तथा उन्मुक्त हास्य के अभाव को पर्यालोचित किया गया है।

प्रस्तुत अध्यायगत विषयों के सिंहावलोकन से उपलब्ध तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पार्वती परिणयम् की भाषा शैली में उदारता,प्रौढ़ि तथा त्रिविध वर्णन शैलियों का विनियोग विषय तथा भाव की अपेक्षा के अनुकूल विहित है। यहॉ वक्ता, वाच्य, विषय, आदि के औचित्य का सम्यक् निर्वाह परिलक्षित होता है। नाटककार

बाणभट्ट के पात्रों द्वारा उतने ही पदों का प्रयोग किया जाता है जितना कि उस समय आवश्यक प्रतीत होता है। पात्रों के मध्य विहित संवाद में प्रेक्षक को कहीं भी ऐसा नहीं प्रतीत होता कि संवाद का अमुक अंश व्यर्थ ही प्रयुक्त है। पार्वती परिणयम् की भाषा शैली में प्रयुक्त संवाद सर्वत्र पात्रों के बाह्ययाभ्यन्तर भावों का द्योतन करते हुए प्रतीत होते है। अभीष्ट अर्थ की प्रतीति कराने में नाटककार बाणभट्ट की भाषा शैली सर्वत्र समर्थ परिलक्षित होती है। संवादों का आश्रय ग्रहण कर समग्र दृश्य को मूर्त रूप प्रदान करने में बाणभट्ट सिद्ध हस्त कलाकार हैं। पात्रों के मध्य घटितवार्तालाप(संवाद) को श्रवण कर प्रेक्षक सूच्य विषय को भी प्रत्यक्ष घटित होता हुआ ्सा अनुभव करता है। आचार्य भरत ने नाटक को सार्ववर्णिक तथा सार्वजनीन कहा है। अत एव नाटक के प्रेक्षक शिक्षित, अशिक्षित दोनों प्रकार के होते हैं। फलतः नाटकीय भाषा ऐसी होनी चाहिए जो सभी प्रकार के प्रेक्षकों के लिए बोधगम्य हो, और भावों के समर्पण में समर्थ हो। इन संवादों में नाट्कार द्वारा प्रायशः सरल एवं असमस्त किन्तु भावाभिव्यञ्जन में समर्थ पदावली का प्रयोग करके एक नाटककार के कर्तव्य का सम्यक् निर्वाह किया गया है।

नाटककार बाणभट्ट ने विषय, भाव तथा कथ्य के सम्यक् बोध के लिए अपनी भाषा शैली में उपमादि अलङ्कारों का सम्यक् एवं समुचित, विनियोग किया है। पार्वती परिणयम् में सन्ध्याकाल,वरयात्रा नगर सज्जा आदि का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि ये वर्णन वर्ण्य विषय को मूर्त रूप प्रदान करते हुए प्रतीत होते हैं। इन वर्णनों का अन्यतम वैशिष्टय यह है कि नाटकीय कथानक में इनका विनियोग इतिवृत्त की अपेक्षा से किया गया है। और उतना ही किया गया है जितना कि आवश्यक रहा है। नाटक का अध्ययन करते हुए कहीं भी ऐसा नहीं प्रतीत होता कि यह विषय मात्र अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए नाटककार द्वारा विनियोजित है। सारांश यह है कि बाणभट्ट की भाषा शैली में वे समस्त आवश्यक तत्व विद्यमान् हैं, जो एक श्रेष्ठ नाटक की भाषा शैली में अपेक्षित होते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का सप्तम अध्याय काव्य सौन्दर्य है। जिसमें सूची कटाह न्याय से **खण्ड क** में सर्वप्रथम नाट्यात्मभूत रसों के अपकर्षक दोषों के दिग्दर्शन के प्रसङ्ग में पार्वती परिणयम् में आपाततः आपतित कुछ पद, वाक्य, एवं अर्थ दोषों को पर्यालोचित किया गया है। पश्चात् **खण्ड ख में** काव्यात्मभूत रस के धर्म गुणों का निरूपण प्रस्तुत किया गया है । इस प्रसङ्ग में गुणभेद विषयक आचार्यो के विभिन्न वर्गों का दिग्दर्शन प्रस्तुत करने के पश्चात पार्वती परिणयम् में वामनादि निरूपित गुणनिदर्शन के क्रम में दश शब्दगुण तथा दश अर्थ गुणों का निरूपण करने के पश्चात् मम्मट प्रभृति आचार्यों के मतानुसार पार्वती परिणयम् में माधुर्यौजप्रसाद रूप त्रिविध गुणों की स्थिति विवेचित है। **खण्ड ग में** काव्यात्मभूत रसों के शोभाधायक अलङ्कारों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रसङ्ग में अलङ्कार का सामान्य स्वरूप प्रतिपादित करने के पश्चात, उपमा–अलङ्कार विषयक विवेचन के प्रसङ्ग में उपमा के अङ्गभूत उपमेय, उपमान,वाचक शब्द,साधारण धर्म तथा उसके अनुगामी, वस्तुप्रतिवस्तुभाव, बिम्ब–प्रतिबिम्बभाव त्रिविध भेदों का स्वरूप प्रस्तुत करने के अनन्तर अलङ्कार शास्त्र में उपमा का महत्व, उपमालङ्कार का स्वरूप, उपमा के भेदों का विवेचन प्रस्तुत करने के पश्चात् ,पार्वती परिणयम् में उपमा निबन्धन प्रदर्शित करने के पश्चात्,रूपक,उत्प्रेक्षा,दीपक,निदर्शना,काव्यलिङ्ग,समासोक्ति,विभावना,विशेषोक्ति,विषम, अतिश योक्ति अर्थान्तरन्यास,उदात्त,प्रतीप,सङ्कर,संसृष्टि प्रभृति अलङ्कारों का विवेचन प्रस्तुत करते हुए पार्वती परिणयम् में उनकी स्थिति को प्रदर्शित किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अष्टम अध्याय व्युत्पत्ति विमर्श है। इसमें पार्वती परिणयम् के व्युत्पत्ति निदर्शन के माध्यम से नाटककार बाणभट्ट के व्युत्पत्ति ज्ञान का पर्यालोचन प्रस्तुत किया गया है। अतः इस अध्याय में वेद, शकुन–विज्ञान, आयुर्विज्ञान, धनुर्वेद पौराणिक,काव्य, लोक–रीति, प्रभृति व्युत्पत्तियों का निदर्शन प्रस्तुत किया गया है।

अष्टम अध्यायगत व्युत्पत्ति–विवेचन से उपलब्ध तथ्य नाटककार बाणभट्ट की बहुज्ञता का डिण्डिमघोष करते हुए प्रतीत होते हैं। यद्यपि नाटककार वाणभट्ट व्युत्पत्ति–बहुज्ञ थे। किन्तु नाटकीय अपेक्षा को ध्यान में रखते हुए उन्होनें शास्त्रीय–व्युत्पत्ति को बहुत महत्व न प्रदान कर पौराणिक और लोकरीतिगत व्युत्पत्ति का विशेष निबन्धन किया है।